धर्मवीर भारती के गद्य साहित्य में सामाजिक संस्थाएं व भाषा प्रयोग

डा० पूनम
एसोसिऐट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
कनोहरलाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मेरठ

सारांश

धर्मवीर भारती की गद्य रचनाओं में विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का प्रयोग हुआ है इन्हीं संस्थाओं के स्वरूप उनकी कार्य शैली व भाषा प्रयोगों कैसे प्रेरित व प्रभावित होकर अनेक भाषा रुपों का प्रयोग किया है। रचनाकार ने बहुभाषा प्रयोगों द्वारा भारत की सामाजिकता व सांस्कृतिकता को अभिव्यक्त ही नहीं किया वरन् उनके विभिन्न आयामों को वैश्विक संस्कृति व भाषा से सम्बद्ध भी किया है।

धर्मवीर भारती ने भाषा को केवल भौतिक एकता ही नही अपितु सामाजिक संस्था, भावात्मक वैचारिक तथा मानवीय मूल्यों की संरक्षिका तथा संवर्धिका भी माना है। रचनाकार ने यह भी स्पष्ट किया है खुले मन से जुड़ी भाषा प्रेम, सदभावना और सहयोग बढ़ाती है। समाज में निष्कपट, निश्छल तथा निःस्वार्थ आचरण और व्यवहार को अनुप्रेरित करती है। भाषा ने सम्पूर्ण मानव समुदाय को भाव, विचार और कर्म के धरातल पर एकता के सूत्र में बांधती है। मन, वाणी और कर्म की एकता की प्रतिपादक भाषा समाज और संस्कृति को अभिनव प्रगतिशील आयाम प्रदान करके समाज को वैश्वीकरण की प्रक्रिया से जोड़ती है।

महत्वपूर्ण शब्द

विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का प्रयोग, कहानियों, और एकांकितयों में चिकित्सा शिक्षा, पत्रकारिता वाणिज्य तथा दर्शन से सम्बन्धित संस्था तथा प्रत्येक संस्था की भाषा, चिकित्सा क्षेत्र की भाषा शिक्षा के क्षेत्र की भाषा का प्रयोग।

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:

डा० पूनम,
''धर्मवीर भारती के गद्य साहित्य में सामाजिक संस्थाएं व भाषा प्रयोग''
शोध मंथन,
सितम्बर 2017,
पेज सं0 246–251
http://anubooks.com/?page_id=581
Artcile No. 36

धर्मवीर भारती ने अपनी गद्यरचनाओं में विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का प्रयोग किया है। इन्हीं सामाजिक संस्थाओं स्वरूप उनकी कार्यशैली व भाषा प्रयोगों को प्रेरित व प्रभावित होकर धर्मवीर भारती ने विभिन्न भाषा रूपों का प्रयोग किया है। धर्मवीर भारती की विभिन्न कहानियों तथा एकांकियों में चिकित्सा, शिक्षा, पत्रकारिता, वाणिज्य तथा दर्शन से सम्बन्धित अनेक संस्थाओं का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक संस्था की भाषा उसकी प्रकृति तथा प्रकार्यता से अनुशासित रहती है। चिकित्सा क्षेत्र की भाषा डाक्टर, नर्स, औषधि तथा विभिन्न चिकित्सीय उपकरण बोधक – शब्द प्रयोगों से स्वतन्त्र प्रयुक्ति बोधक बन गयी है। शिक्षा क्षेत्र से प्रयुक्त भाषा शिक्षा की प्रकृति तथा प्रकार्यता से अनुशासित है। शिक्षक, छात्र, स्कूल कॉलेज, एल०टी० तथा प्रशिक्षण केन्द्र आदि अनेक भाषाओं के प्रयोग शिक्षा क्षेत्र को बहुआयामी बनाते हैं। चाँद और टूटे हुए लोग ''कहानी संग्रह में संकलित ''मरीज नम्बर सात'' शीर्षक कहानी चिकित्सा क्षेत्र के भाषा प्रयोगों से प्रभावित तथा अनुशासित है। धर्मवीर भारती ने ''मरीज नम्बर सात'' कहानी में चिकित्सालय में चिकित्सकीय वातावरण का मानक हिन्दी में वर्णन किया है। सम्पूर्ण भाषा अरबी फारसी लोग बोली शब्दों से प्रभावित मानक हिन्दी है। नर्स, रोगी, डाक्टर, वार्ड, कोशिश, कमरा, अजब, खून, मरणासन्न, स्ट्रेचर तथा ईश्वर आदि शब्द अलग अलग भाषाओं में प्रयुक्त हुए हैं।

इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित पंक्तियों से की जा सकती है–

नर्से झल्लाई हुई थीं। रोगी सहमें हुऐ थे, डॉक्टर अपने फेरे में उस वार्ड को टाल जाने की कोशिश करता था। कमरे में एक अजब सा खामोश, भयावना, मनहूस वातावरण छाया हुआ था। हवाओं में खून जम गया था और खिड़कियों से रोशनी जैसे अन्दर जाने में डरती थी, यहां तक कि छत पर लगा पंखा भी दबे पॉव सहम सहमकर चलता था और यह सब केवल उस मरणासन्न अधेड़ औरत की वजह से, जो तीन दिन से बार–बार मौत के मुँह तक जा–जाकर लौट आती थी। मंगल रात के सवा दो बजे एकाएक दौड़–धूप हुई, स्ट्रेचर मंगाया गया, डॉक्टर को खबर दी जाय या न दी जाय, इस पर नर्सो में काना–फूसी हुई। वार्ड के दूसरे मरीजों ने सिहरकर करवटें बदली, मन ही मन ईश्वर का नाम लिया, किसी तरह पानी का घूँट गले में उतारने की कोशिश की।

लेकिन चार बजे के लगभग उसे फिर चेत आ गया और वह उठ बैठी। नर्सो को यह बात काफी अपमानजनक मालूम पड़ी और उन्होंने झल्लाकर आपस में लड़ना शुरू किया। डॉक्टर ने सोचा, बला गले से उतरते –उतरते फिर उलझ गयी। मरीजों के मुँह पर स्याही दौड़ गयी। उन्होंने सोचा मौत ने दरवाजा तो देख लिया। वह बच गयी तो क्या, अब पता नहीं किसके सर उतरे।

दो बार फिर वही हालत हुई। बुध को शाम के पाँच बजे और रात को एक बजे। उसके प्राण टंगे थे, किसी क्षण कुछ भी हो सकता था।''[1]

धर्मवीर भारती की कहानी संग्रह की युवराज शीर्षक कहानी में कहानीकार ने चिकित्सालय के दूषित वातावरण का मानक हिन्दी में विवेचन किया है। डाक्टर और मरीज के

संवादों से कार्यशैली तथा मानसिकता को व्यंजित किया है। डाक्टर के कथनों की भाषा अंग्रेजी प्रभावित हिन्दी है। डाक्टर की भाषा में उपेक्षा, झुंझलाहट तथा कठोरता आदि भाव दिखाई देते हैं। मरीज की भाषा में पीड़ा विवशता तथा निराशा दिखाई देती है। उसकी भाषा मानक हिन्दी है। उसके कथन में यत्र–तत्र अरबी–फारसी के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। लेखक ने मुहावरेदार भाषा का प्रयोग भी किया है। मेल, नर्स तथा सिस्टर जैसे चिरपरिचित अंग्रेजी के शब्द कहानी की भाषा को अधिक प्रभावी बनाते हैं। इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित पंक्तियों से की जा सकती है–

''सुबह डॉक्टर आया। उसने स्ट्रेचर मंगवाया। दूसरे कमरे में बुलवाकर जांच की। कहा–'' आपको यह वार्ड छोड़ना पड़ेगा।'' क्यों? दर्द के बावजूद उसने तनकर कहा–''आप मुझे बहुत परेशान करेंगे तो .. तो...'' मगर वह आगे नहीं बोल सका क्योंकि उसी जबान तालू से चिपक गयी। किसी तरह थूक निगलकर बोला–''आप मर्ज क्यों नहीं बताते?''

डॉक्टर एक क्षण हिचका– फिर ज्यों ही उसने मर्ज बताया।

युवराज का चेहरा पीला पड़ गया। मेल नर्स ने मुस्कराकर सिस्टर की ओर देखा। सिस्टर ने झेंपकर सर झुका लिया।''[2]

''आधार और प्रेरणा'' तथा ''अमृत की मृत्यु'', ''स्वर्ग और पृथ्वी' कहानी संग्रह में संकलित महत्वपूर्ण कहानियाँ है। इन कहानियों में दर्शन की अभियव्यक्ति हुई है। अमृत की मृत्यु कहानी में बौद्ध और वेदान्त दर्शन का द्वन्द्व अभिव्यंजित हुआ है। आचार्य नागार्जुन ने अपने शिष्य को सम्बोधित करते हुये सत्य और असत्य के द्वन्द्व को दर्शन की भाषा में व्यक्त किया है। आचार्य नागार्जुन सत्य को अनिर्वचनीय मानते हैं। यह अनिर्वचनीयता ही शून्य है। अपने को अस्तिव और अनस्तित्व से ऊपर उठाना मानव गति का लक्ष्य है। जीवन का सत्य तर्कातीत है, मानव बुद्धि और मानव कल्पना भ्रामक हैं। अतः वे सत्य के मूल से वंचित रहती है। नागार्जुन के सम्पूर्ण कथन में दर्शन के अनुरूप संस्कृतनिष्ठ मानक हिन्दी का प्रयोग हुआ है। दर्शन की भाषा विचारपूर्ण होने के कारण बोझिल परिलक्षित होती है। इस भाषा को दार्शनिक चिन्तक ही समझ सकते हैं। सामान्य आदमी की पकड़ से पूरी तरह से यह भाषा दूर दिखाई देती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कहानीकार ने दर्शन की भाषा को वर्ग विशेष तक सीमित कर दिया है। दार्शनिक वर्ग ही इस भाषा को समझा सकता है। अन्य विषय का ज्ञाता नहीं समझ सकता। इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि दर्शन की अभिव्यक्ति संस्कृत–निष्ठ हिन्दी में ही सम्भव है, कोडमिश्रण तथा कोडपरिवर्तन में नहीं।

इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित पंक्तियों से की जा सकती हैः–

''आचार्य नागार्जुन ने हाथ उठाकर चारों और उमड़ते हुए प्रश्नों को रोका। भिक्षुकों के प्रश्नानुसार अधर काँपकर रूक गये। आचार्य ने पैनी दृष्टि से चारों देखा और हँसकर बोले– ''भिक्षुओं! उत्तर और प्रत्युत्तर, विकल्प ओर विचार, तर्क, विर्तक से जीवन के सत्य का निरूपण नहीं हो सकता। तर्को से जीवन की जिस सत्ता का स्पष्ट संकेत तुम्हें मिलता, सम्भव है। गहनतर तर्को से कोई उन संकेतों को असत्य सिद्ध कर दें। जिसे हम आज असम्भव समझते

हैं, सम्भव है कालान्तर में वही सम्भव हो जाये। मनुष्य की कल्पना इतनी भ्रमात्मक है कि हम सत्य का मूल रूप देखने से वंचित नहीं है। न हमें यह ज्ञात है कि इन वस्तुओं में अस्तिव और अनस्तित्व समान रूप से व्याप्त है। यही चरम अज्ञान हमारा एकमात्र ज्ञान है। सत्य की इसी अनिर्वचनीयता का नाम शून्य है। इसी शून्य की साधना, अपने को अस्तित्व से भी ऊपर उठाना हमारी गति का लक्ष्य है। यह सभी प्रश्नों का उत्तर है बस।''[3]

''स्वर्ग और पृथ्वी'' कहानी संग्रह में संकलित ''कवि और जिन्दगी'' ऐसी कहानी है जो राजनीति और साहित्य के सह–सम्बन्धों की व्याख्या करती है। इस कहानी में राजसत्ता से सम्बन्ध साहित्यकार की स्वाधीनता को व्यक्त किया गया है। कवि ने राजा के कथनों में आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है। भाषा में लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों का प्रयोग भी हुआ है। मानवीकरण अंलकार के प्रयोग द्वारा कोमल भावनाओं को काव्यात्मक भाषा में व्यक्त किया गया है। राजासुरा और सुन्दरी दोनों से व्यावहारिक स्तर पर जुड़ा है। वह काव्य की वासना को तीव्र बनाने वाला मानता है, परन्तु रचनाकार भावों की रमणीयता, सरसता तथा सात्विकता में विश्वास करता है। साहित्यकार के लिए साहित्य साधना है। साधना की भाषा वस्तुवादी होती है। रचनाकार रचना को समाज की सम्पत्ति मानता है, व्यक्ति विशेष की नहीं। साहित्य व्यक्तिपूजा नहीं, समाज की आराधना है। रचनाकार ने संस्कृतनिष्ठ भाषा में स्पष्ट रूप से कहा है। कि कविता वासना की क्रीत दासी नहीं है और न कवि किसी की इच्छा का गुलाम। कविता धन से क्रय नहीं की जा सकती। साहित्यकार को शक्ति से झुकाया नहीं जा सकता। सामन्तवाद और पूंजीवाद दोनों की शोषणकारी प्रक्रिया से साहित्य मुक्त है। कहानीकार ने काव्यभाषा के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए शासक वर्ग की अहम्जन्य भाषा को तथा कवि को लोकजन्य भाषा को निरूपति किया है। भाषा कथ्य, संवेदना, विचार, परिवेश, पात्र, विषयभेद तथा प्रयोजनभेद से पृथक–पृथक परिलक्षित होते हुए भी साहित्य की रचना–प्रक्रिया, प्रकृति तथा प्रकार्यता से नियंत्रित तथा अनुशासित है। राजा तथा कवि दोनों के कथनों की भाषा में संस्कृत की तत्सम् शब्दावली प्रभावी है। इस भाषा को भी साहित्यकार तथा साहित्य मर्मज्ञ ही समझ सकता है, समाज के अन्य पक्षों से जुड़ा व्यक्ति इसे नहीं समझ सकता। संस्कृतनिष्ठ होने के कारण दोनों पात्रों की भाषा वर्गबद्ध हो गयी है। बंकिमता, विस्मरण , मधुपात्र, अस्त–व्यस्त तथा क्षुद्रकवि जैसे संस्कृतनिष्ठ शब्द संस्कृत भाषायी समाज को स्पष्ट करते हैं।

इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जा सकती हैः–

''गाओ कवि!'' अनुरोध भरे स्वर में राजा बोला– ''गाओ, तुम्हारा पहला ही स्वर जैसे हर लेता है जीवन की सीमाएँ, पहुँचा देता है चाँदनी के लोक में, जहाँ कल्पना फूलों से श्रृंगार कर अतिथियों का स्वागत करती है। मैं भूल जाना चाहता हूँ यह संघर्श क्षण भर को मुझे खो जाने दो मधु के उफान में, अधरों की कोमलता में नयनों की बंकिमता में – गाओ.....''

कवि मूक था।

राजा पात्र से एक घूँट पीकर फिर बोला, उसका स्वर भारी हो चला था––

''क्यों नहीं गाओगे कवि? बोलो, यह विस्मरण की बेला है मित्र! मैं भूल जाना चाहता हूँ अपनापन, मैं डूब जाना चाहता हूँ मदिरा की इन बाकी लहरियों में और तुम्हारी कविता का स्वर मदिरा से अधिक नशीला है अंगूरों से अधिक रसीला है। अपने स्वरों की नौका पर मुझे ले चलो उस तट पर मेरे माझी! गाओ!''

कवि फिर भी मूक था।

''तुम क्यों मूक हो? राजा का स्वर कर्कश हो चला था। और उसमें अधिकार की चेतना गरज उठी थी। ''बोलो! बोलो!'' राजा ने अधीर होकर मधुपात्र फर्श पर पटक दिया। सामने बैठी अस्त व्यस्त कामिनी चौंक उठी, सजग हो उठी।

''नहीं गाओगे? राजसभा के टुकड़ों पर पलने वाले क्षुद्रकवि! राजा की छोटी–छोटी इच्छाओं का अपनापन!''

कवि तिलमिला उठा––''बस महाराज! उसकी आंखों से तारे टूट रहे थे, उसके स्वरों में तूफान गरज रहा था––''कविता वासना की क्रीत दासी नहीं है, महाराज और न कवि किसी की इच्छा का गुलाम। रंगारंग के वातावरण में गान घुट जाते है। राजन्! मदिरा के सौरभ में कविता कुम्हला जाती है। वासना की शिलाओं से टकरा कर स्वर टूट जाते हैं। चाँदी की टुकड़ों पर मैं कविता की हत्या नहीं कर सकता।''[4]

''नदी प्यासी थी'' एकांकी संग्रह में संकलित ''आवाज का नीलाम'' शीर्षक में दिवाकर और बाजोरिया के संवाद दिये गये हैं। दिवाकर के कथनों की भाषा पत्रकारिता से जुड़ी है। दिवाकर पत्रकार ओर साहित्यकार दोनों ही है। वह साहित्य और पत्रकारिता दोनों को महत्वपूर्ण समझता है। उसके पहले कथन में उस व्यावसायिक भाषा का प्रयोग हुआ है, जो समाचार पत्रों के शीर्षकों के रूप में प्रयुक्त होती है। वह समाचार पत्र को इस प्रकार के व्यवसायबोधक शीर्षकों से मुक्त करना चाहता है। वह इन सब के नीचे निहित इंसान की आवाज को महत्व देना चाहता है। उसने अपने पहले कथन में अरबी–फारसी तथा लोक बोली प्रयोगों से अनुशासित अख़बारी हिन्दी का प्रयोग किया है वह जनता की आवाज को अपने समाचार पत्र का मूल–मंत्र बनाना चाहता है। दूसरे कथन में उसने मानक हिन्दी में उसने अपने मन की पीड़ा को व्यक्त किया है उसका मानना है कि जनता इतनी उदासीन है कि वह नये इंसान की आवाज नहीं सुनना चाहती है। वह सत्य और न्याय नहीं चाहती। वह भौतिक परिवेश में विश्वास करती है। लोक–प्रचलित भाषा में उसने लोक की मानसिकता को व्यक्त किया है। सेठ बाजोरिया पत्रकारिता का व्यापारीकरण करना चाहते हैं। वह साहित्य पत्रकारिता दोनों को भौतिकवादी संस्कृति से जोड़ना चाहते है। दिवाकर बाजोरिया के लिये व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग करता है। वह सांस्कृतिक स्तर की उन्नतता पर व्यंग्य करता है वह संस्कृत तथा अंग्रेजी प्रभावित मानक हिन्दी का प्रयोग करता है। बाजोरिया तथा दिवाकर दोनों की मान्यतायें तथा मानसिक स्थितियाँ उनकी भाषा में व्यंजित हुई हैं। दोनों का स्वतंत्र व्यक्तितत्व भी उनकी भाषा में व्यंजित हुआ है। पत्रकारिता की भाषा होते हुये भी दोनों के कथनों की भाषा दोनों के सामाजिक स्तर भेद तथा प्रयोजन भेद से बहुस्तरीय परिलक्षित होती है।

इस विवेचन की पुष्टि निम्नलिखित उदाहरणों से की जा सकती हैः–

दिवाकर :

(पियानों हटाकर) क्या बताऊँ? अखबार की दुनिया में रोज खबर आती है। हड़तालों के नारे, लड़ाइयों का शोरगुल सेनाओं की परेड़ें , जंगी जहाजों का घर्राता लेकिन मुझे सब इतने बेमानी, इतने खोखले लगते हैं, जितने इस बचकाने खिलौनें के स्वर। लेकिन कभी–कभी लगता है इन्हीं ध्वंस और विनाश की आवाजों में कहीं नये इंसान की आवाज का भी निर्माण हो रहा है। मैंने सोचा उस आवाज को जिन्दा रखने के लिए, उसे ऊपर लाने के लिए हस्ती को मिटा दूँगा वही आवाज मेरी जिन्दगी होगी। इसीलिये....।

बाजोरिया :

शायद इसीलिये आपने अपने अखबार का नाम ''आवाज'' रक्खा था।

दिवाकर :

जी हाँ। और इस आवाज के लिए अपने को बर्बाद कर दिया था, लेकिन जनता नए इंसान की नहीं सुनना चाहती। उसे चाहिए शोख कवर, भड़कीले चित्र, रंग–बिरगें विशेषांक . ... वह सब जो उसे सेठ बाजोरिया के अखबार में मिलता है।

बाजोरिया :

देखिए! यह पर्सनल रिमार्क आपको शोभा नहीं देता दिवाकर जी! आप मुझे बिल्कुल गलत समझ रहे हैं। मेरा कतई यह इरादा नहीं कि मैं जनता को गुमराह करूँ, बात यह है कि दिवाकर जी, कि मुझे साहित्य और पत्रकारिता से कुछ इतना लगाव है कि दिन–रात में सोचता हूँ कि हमारे यहाँ भी अमेरिका की तरह सजे–सजाए अखबार निकलें, सस्ते से सस्ते, सुन्दर से सुन्दर ज्यादा से ज्यादा जनता उन्हे पढ़े। उसका सांस्कृतिक स्तर ऊँचा हो।

दिवाकर :

सांस्कृतिक स्तर ऊँचा हो। (व्यंग्य से हँसकर) इधर तमाम लोगों को सांस्कृतिक स्तर सुधारने की बीमारी लगी है। कोई ''टाइम्स''खरीद रहा है ,तो कोई लाइमलाइट''! आप ....''।[5]

सन्दर्भ

1. मरीज नम्बर सात, पृ0 सं0 183, धर्मवीर भारती, वाणी प्रकाशन, 1999 प्रथम संस्करण।
2. युवराज, पृष्ठ संख्या 195, धर्मवीर भारती, वाणी प्रकाशन, 1999 प्रथम संस्करण।
3. अमृत की मृत्यु, पृ0 सं0 91, धर्मवीर भारती, वाणी प्रकाशन, 1999 प्रथम संस्करण।
4. कवि और जिन्दगी, पृ0 सं0 105, धर्मवीर भारती, वाणी प्रकाशन, 1999 प्रथम संस्करण।
5. आवाज का नीलाम, पृ0 सं0 56, 57, धर्मवीर भारती, वाणी प्रकाशन, 1999 प्रथम संस्करण।